P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मनुष्य के संदर्भ में ही जीवन मूल्यों की सार्थकता

सारांश

जब कोई सामाजिक, राजनैतिक अथवा आर्थिक विचारधारा जनता बहुत समय तक मूक होकर सहती रहती है और जब सहना असहनीय हो उठता है तो जनता में उस विचारधारा परम्परा को तोड़ने के लिये एक तीव्र विस्फोट होता है, जो पुरानी मान्यताओं, धारणाओं को नष्ट कर देता है। यही परिवर्तन कहलाता है। व्यक्ति जिस समाज में संस्कारों में पलता है, बढ़ता है उन्हें स्वीकार करता है, परन्तु वे ही संस्कार जब मनुष्य की उन्नति के मार्ग में बाधक बन जाते हैं, तो व्यक्ति उनसे टकराता है, संघर्ष करता है इस तरह नये मूल्यों का जन्म होता है।

मुख्य शब्द : जीवन मूल्य, परमात्मा, साहित्य।

स्वर्ण लता कदम
सह प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
शहीद मंगल पाण्डे राजकीय
महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,
मेरठ, उ0प्र0, भारत

प्रस्तावना

जीवन जीवधारियों के लिए चिरंतन चिंतन का विषय रहा है। जीवधारियो में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य ने प्रारम्भ से ही इसके संबंध में जानने की जिज्ञासा प्रकट की है, और अपने युग के अनुरूप वह इस संबंध में कुछ न कुछ जानता भी आया है। किन्तु आज विज्ञान और तकनीक के चरम उत्कर्ष के काल में भी सम्भवतः कोई व्यक्ति इस स्थिति में नहीं है कि वह जीवन के संबंध में कोई अन्तिम बात कह सके। ऐसा कदाचित न संभव ही है न वांछित, क्योंकि जीवन भी तो निरंतर गतिशील एवं परिवर्तशनील है, उसकी प्रकृति ही नित्य नवीना है। विविध रूपा है, फिर भी मनुष्य उसके संबंध में निरंतर सोचता रहा है। कुछ न कुछ कहता रहा है, और किसी न किसी सत्य को पाता भी रहा है।

मानव जीवन एक गूढ़ विषय है। विभिन्न विचारकों ने जीवन को समझने ने समझाने का प्रयत्न किया है। रवीन्द्रनाथ टैगोर जीवन की व्याख्या में न उलझ कर कहते हैं– ''जीवन को ठीक उसी प्रकार समय पथ पर मचलने देना चाहिए, जिस प्रकार वनस्पतियों पर ओस बिन्दु पुलकते हैं।''[1] डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ''जीवन को संयोग, भाग्य और चरित्र के ताने–बाने से बुना रहस्यमय कपड़ा मानते हैं।''[2] प्रसाद ने ''जीवन को एक प्रश्न एवं मरण को उसका अटल उत्तर स्वीकार किया है।''[3]

प्रेमचन्द्र के अनुसार – ''जीवन परमात्मा की सृष्टि है। वह अनन्त अबोध और अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है इसलिये सुगम सुबोध और मर्यादित है। जीवन परमात्मा के सामने जवाबदेय है या नहीं, यह हमें नहीं मालूम लेकिन साहित्य मनुष्य के सामने जवाबदेय है।[4] गीता में आत्मा को अजन्मा, नित्य शाश्वत व पुरातन माना है

''न जायते म्रियते व कदाचिन्नयां भूत्वा भविता ना वा नभूयाः
अजो नित्यः शाश्वतो यं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।''[5]

महात्मा गांधी ने "Life is an Inspiration" कहकर जीवन को एक आकांक्षा स्वीकार किया है।[6] टालस्टाय जीवन को न दुखपूर्ण कह पाते हैं न सुखपूर्ण इस प्रकार हास्य रूदन मिश्रित जीवन स्वयं अपनी परिभाषा बनकर रह जाता है। एक प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक चुआनशियस ने ''जीवन और मृत्यु को अमर जीवन की निरन्तरता की कड़ियाँ स्वीकार किया है। जीवन अवश्यम्भावी है, क्योंकि वह आता है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, वह जाता है, क्योंकि उसे रोका नहीं जा सकता।[7] एम०जी० वेल्स आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं – ''चेतना का ही दूसरा नाम जीवन है।''[8]

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं विचारों के आधार पर अन्तिम रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है। वस्तुतः जीवन एक प्रक्रिया है, जो अनंत काल से चली आ रही है, एक प्रवाह है जो निरन्तर हो रहा है। यह आकाश की भांति व्यापक है, जिसमें सुख–दुख के जाने कितने ओर छोर छिपे हैं। वह सागर के सामन गहरा है – विस्तीर्ण, प्रगाढ़ नीला, ऊपर हलचल से भरा पवन के थपेड़ों से आहत, शत–शत तरंगों से उद्वेलित, फेनोर्मियो से टूटा हुआ किन्तु प्रत्येक टूटने में अपार शोभा लिये–

''नीचे अगाध, अथाहः
असंख्य दबावों, तनावों खींचों और मरोड़ों को
अपनी द्रव एक रूपता में समेटे हुए
असख्य गतियों और प्रवाहों को
अपने अखण्ड स्थैर्य से समाहित किये गये
स्वायत, अचंचल।''[9]

जीवन की इस विशिष्टता और वैविध्य को दृष्टि में रखकर जब जीवन–मूल्यों की चर्चा की जाती है, तो उनके भी वैराट्य और वैविध्य पर ध्यान केन्द्रित होता है। अब हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि ये जीवन मूल्य क्या है?

जीवन मूल्य क्या है? – जीवन मूल्य में 'मूल्य' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। यदि इसका सही अर्थ समझ लिया जाये तो जीवन–मूल्यों को समझना आसान होगा। ''मूल्य शब्द वस्तुतः अर्थ शास्त्रीय है।'' अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग 'मूल्य के रूप में' हुआ है। वस्तु के बदले में दिया जाने वाला धन या पारिश्रमिक ही मूल्य है। अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग प्रचलित मूल्य विनियम दर तथा आधुनिक युग में मुद्रा के रूप में किया जाता है। मूल्य वस्तुतः क्रेता की उपयोगिता पर निर्भर होता है। एक वस्तुत किसी के लिये उपयोगी हो सकती है, किसी के लिये अनुपयोगी है। ऐसी स्थिति में वस्तु का मूल्य कम नहीं होता है– Value depends on Validity[10]

आधुनिक युग में मूल्य शब्द का प्रयोग आर्थिक, राजनैतिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सभी दृष्टिकोणों में प्रयोग होने लगा है। मूल्य शब्द को मानव और जीवन से जोड़ा जाने लगा है। साहित्य के संदर्भ में यह एक ऐसा गुण है जिससे कृति मूल्यवान बनती है। साहित्यकार रचनाकार की आत्माभिव्यक्ति होती है। अपनी सृजन प्रक्रिया कभी रूकती नहीं। विशेष परिस्थितियों में उससे क्षणिक स्तब्धता अवश्य आती है। उसके बाद फिर सृजन कार्यक्रम चलने लगता है, इस समय में रचनाकार विकास की सम्भावनाओं पर स्वतन्त्रता से विचार करता है। यही विचाराभिव्यक्ति एवं चिन्तन उसकी कृति में उभर आते हैं। जो कालान्तर में जीवन–मूल्य के नाम से जाने जाते हैं।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये तथा जीवन को आनन्दमय बनाने के लिये जिन बातों को उचित मानता है, उन्हें ही अपने जीवन के आदर्श भी बनाना चाहता है। जब ये आदर्श या मान्यताएं स्थायी होकर व्यवहारिक रूप में अपनायी जाती है तब ये मानव–क्रिया की आधारशिला बन जाती है, और ये आधारशीला ही मूल्य से अभिहित की जाती है। मूल्यों की व्याख्या जीवन में अस्तित्व एवं विकास के संदर्भ में की जाती है। कुछ अवधारणाएँ ऐसी है, जिससे मानव जीवन परिचालित है, जैसे – विवाह, शिष्टाचार ओर जाति ये धारणाएं मानव–जीवन को सार्थक भी बनाती है। वास्तव में मूल्य एकधारणा है, जिसका संबंध मानव है।

जहाँ एक ओर विज्ञान मानव–जीवन की भौतिक दृष्टि से सुखमय बनाता है, वहाँ दूसरी ओर तकनीकी विकास औद्योगिकीकरण एवं शास्त्रों के अवष्किारों ने मानव जीवन को लघु एवं आशंकित बना दिया है, जिसके कारण भावात्मक मूल्यों का लोप हो गया है। मानव मानव न रहकर एक यन्त्रवत हो गया है। मानव वास्तुविकता से दूर होता चला जा रहा है। जैसे जैसे विज्ञान की उन्नति होती जा रही है वैसे वैसे मनुष्य वास्तविकता से दूर होता जा रहा है। विज्ञान द्वारा भौतिक आनन्द में ही वह आनन्द का अनुभव कर रहा है। दोनों विश्व युद्धों का कारण भी विज्ञान की प्रगति ही है। डॉ० दधीचि ने कहा है –''वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने प्राचीन धर्म एवं दर्शन–जन्य मूल्यों का नाश तो किया, किन्तु मानव जाति को निश्चित मूल्य नहीं दिये। विषय विषयी के सामंजस्य को नष्ट कर, उनमें विरोध स्थापित किया मनुष्य के बाहरी पक्ष अर्थात् शरीर व्यक्तित्व और समाज को केन्द्र स्थानीय बनाया। मनुष्य को विवेकी ओर सामर्थ्यवान बनाकर उसे लघुता, चिन्ता, निरर्थकता, मृत्यु, भय, मूल्यहीनता आदि घातक वृत्तियों और भ्रमों को उत्पन्न किया।''[11]

मनुष्य के संदर्भ में ही मूल्यों की सार्थकता है, यद्यपि देश, काल परिस्थिति एवं चेतना के अनुसार मूल्य भी नये–नये रंगरूप धारण कर लेते हैं।

प्रत्येक समय में साहित्य में जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा होती रही है। प्रतिष्ठा मात्र से ही साहित्य की रचना नहीं की जाती साहित्य में साहित्यकार केवल आत्मोपलब्धि नहीं देते बल्कि अन्तर्दृष्टि भी देते हैं। इसलिये साहित्य में वे ही जीवन मूल्य गृहीत किये जाते हैं, जिन्हें अन्तर्दृष्टि या तो स्वयं पाती है या पुनः उपलब्ध करती है। साहित्य के मूल्य जीवन मूल्य से भिन्न नहीं है जिनका मूल्य जीवन में है उन्हीं का मूल्य साहित्य में भी है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। साहित्य में जीवन मूल्य थोपे नहीं जाते।'' साहित्य में जीवन–मूल्य ऊपर से आरोपित नहीं होते बल्कि वे साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते हैं जो उनकी आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में रूपायित होकर अपनी सुन्दरता, उदात्तता और महत्ता के कारण समाज द्वारा जीवन मूल्यों के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं।[12]

वैदिक काल में जीवन मूल्य अपने सृजनात्मकता के रूप में थे। जिसे मानव व अपने मैं दिव्य प्रेरणा मानता था, जिसके अनुसरण में उसे न केवल अपना जीवन चरितार्थ लगता था, बल्कि अपनी सृजनात्मकता में उसे सृष्टि के मूल में स्थित इच्छामय व्यापार का अपने दृष्टिस्तर पर स्फुरण उपलब्ध होता था।

जीवन मूल्यों का दूसरा नाम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ का तात्पर्य वे आदर्श एवं प्रयत्न जिनमें जीवनोद्देश्यों की पूर्ति ही, जीवन श्रेष्ठ बनें। भारतीय दार्शनिक चिन्तकों ने जीवन के चार (उद्देश्य) माने हैं। पुरुषार्थ शब्द का प्रयोग विशेष रूप से मानव मूल्यों के लिये होता है। सी०ए० मूर के अनुसार – "The Indian scheme of value recognizes for human ends (Purusharathr) they are wealth (Artha) pleasure (Karma) righteousness (Dharma) the perfection (Moksha)[13] पुरुषार्थ मानव व्यक्तित्व के चार अंश है। मानव शरीर के लिए अर्थ, मन के विकास के लिए, प्रेम, काम बुद्धि के विकास के धर्म, आत्मा के विकास के लिये मोक्ष को पुरुषार्थ का लक्ष्य माना है, ये पुरुषार्थ मानव के नैतिक–आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भारतीय जीवन के प्राचीनतम मूल्य है। ये एक उच्चतम जीवन एवं ज्ञान की अभिव्यक्ति करते

हैं। युग एवं समय के परिवर्तन के साथ–साथ इनकी व्याख्या के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आता जाता है।

धर्म

धर्म की उत्पत्ति 'रिलीजन' शब्द से मानी गयी है। (Riligo) लैटिन शब्द है, जो कालान्तर में रिलीजन बन गया है। रिलीजन का तात्पर्य विश्वास और प्रार्थना। धर्म का महत्व मानव संस्कृति में अद्वितीय है। धर्म ही मानस का लक्ष्य बताता है। शेष सब लक्षण पशु एवं मनुष्य में समान ही होते हैं। आदिमतम अवस्थाओं में कोई मानव समुदाय ऐसा नहीं है और न रहा है। जो धर्म से रहित है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव का जन्म धर्म के साथ ही हुआ है मानवता के चिह्न जहाँ भी मिलते हैं, वहाँ धर्म के लक्षण मिलते हैं कुछ विद्वान पौराणिकता को ही धर्म मानते हैं। ''धर्ममानवीय अर्थ और अन्वेषण के उस रूप को कह सकते हैं, जो जीवन का लक्ष्य लोकोत्तर और परम चैतन्य की स्थिति की प्राप्ति को अथवा परम चैतन्य के बोध की योग्यता की प्राप्ति को स्वीकार करता है।''[14] पुरुषार्थ चतुष्य के अन्तर्गत धर्म का स्थान सर्वोच्च है।

अर्थ

भारतीय चिन्तनधारा के अनुसार पुरूषार्थों में अर्थ का द्वितीय स्थान है। अर्थ को कुछ विद्वानों ने जीवन का अनिवार्य, जीवन मूल्य मानते हैं तथा कुछ साध्य रूप में मानते हैं। अर्थ का सामान्य अर्थ भौतिक सुखों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति है। अर्थ समस्त कर्मों के पालन में सहायक है। जीवन की सफलता एवं पूर्णता के लिये तीनों मूल्य (धर्म, अर्थ और काम) आवश्यक है।

काम– ''धमार्थ कामाः सममेव सेव्या,
यो हेयेक भक्तः सः नरो जघन्यः।
तथोस्तु दाक्ष्यं प्रवदन्ति मध्यं,
स उत्तभो यो मिरतस्त्रि वगे।[15]

अर्थात् जिसके मन में कोई कामना नहीं है, उसे न तो धन कमाने की इच्छा होती है, न ही धर्म की। कामना हीन, मनुष्य तो काम (भोग) भी नहीं चाहता। इसलिये त्रिवर्ण में काम ही सबसे बढ़कर है। 'काम' धर्म और अर्थ का कारण है। अतः वह धर्म और अर्थ रूप है।

काम मूल्य ही ऐसा मूल्य है। जिसके बारे में विद्वान मतैक्य नहीं है। मनु ने भी काम को समस्त क्रियाओं का मूल माना है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी काम कुसुम धनुसायक लीन्हे; सकल भुवन अपने बस कीन्हे' कहकर काम को एक ऐसी शक्ति माना है, जिसके वश में समस्त विश्व है।[16]

मोक्ष

मोक्ष पुरुषार्थ का अन्तिम एवं सर्वोच्च मूल्य है। धर्म, अर्थ, काम वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति के ही साधन माने गये हैं। इन तीनों पुरुषार्थों को मोक्ष के कारण ही साधन मूल्य एवं मोक्ष को साध्य माना गया है। मोक्ष ही ऐसा मूल्य है जिसको प्राप्त कर लेने के बाद कुछ भी प्रापत करने को रह नहीं जाता। जीवन के अन्तोगत्वा उद्देश्य पर ही मोक्ष की धारणा अवस्थित है। मोक्ष की धारणा रहस्यमय है। इसके लिये नेति शब्द का प्रयोग किया गया है। शिवगीता में पूर्व ज्ञान प्राप्ति को मोक्ष कहा गया है। इसके अनुसार ''मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि उसकी प्राप्ति के लिए कोई दूसरे प्रदेश या गाँव जाना पड़े। वास्तव में हृदय की अज्ञान ग्रन्थि के नाश हो जाने पर अर्थात् पूर्णज्ञान प्राप्ति ही मोक्ष है।''[17] भारतीय दर्शन में कुछ विद्वान मृत्यु को मोक्ष मानते हैं तथा कुछ दुःखों एवं आसक्ति के अभाव को मुक्ति मानते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'प्राचीन धारणा के अनुसार जीवन–मूल्यों में मोक्ष सर्वोच्च मूल्य माना जाता रहा है धर्म, अर्थ, काम को भोगकर ही मानव साध्य की ओर अग्रसर होता है जो मनुष्य समान रूप से इन तीनों वर्गों में अनुरक्त है वहीं मनुष्य उत्तम है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, में अब अर्थ एवं काम ही वरेण्य रह गए हैं।

जीवन मूल्यों में बदलाव – जीवन मूल्यों का आधार मानवी रिश्ते हैं, जिसकी सबसे पहली और महत्वपूर्ण ईकाई है परिवार। परिवार में माता–पिता, भाई बहिन, पति–पत्नी, देवर भाभी तथा सास बहू आदि के बीच रिश्तों के बदलाव पर मूल्यों का बदलाव निर्भर करता है। इसी प्रकार मूल्यों का दायरा बढ़ता जाता है, मनुष्य के साथ मनुष्य का रिश्ता, मनुष्य के साथ समाज का रिश्ता और अंततः मनुष्य के साथ समस्त जगत् के रिश्तों के आधार पर जीवन मूल्यों का निर्धारण होता है।

जब कोई सामाजिक, राजनैतिक अथवा आर्थिक विचारधारा जनता बहुत समय तक मूक होकर सहती रहती है और जब सहना असहनीय हो उठता है तो जनता में उस विचारधारा परम्परा को तोड़ने के लिये एक तीव्र विस्फोट होता है, जो पुरानी मान्यताओं, धारणाओं को नष्ट कर देता है। यही परिवर्तन कहलाता है। व्यक्ति जिस समाज में संस्कारों में पलता है, बढ़ता है उन्हें स्वीकार करता है, परन्तु वे ही संस्कार जब मनुष्य की उन्नति के मार्ग में बाधक बन जाते हैं, तो व्यक्ति उनसे टकराता है, संघर्ष करता है इस तरह नये मूल्यों का जन्म होता है।

मशीनीयुग ने मानव को ईश्वर के प्रति आस्था की भावना को ठेस पहुँचायी। मानव मन पर जो ईश्वर की शक्ति का स्थान था। ईश्वर के प्रति जो भय था वह नष्ट हो गया। वह अपने को सर्वेसर्वा समझने लगा, यह मूल्यों में बहुत बड़ा परिवर्तन था। आज धन ही मानव–जीवन के स्तर का मापदण्ड है। मानव–मूल्यों में धन की स्थिति प्रमुख है और जहाँ पर केवल धन की दृष्टि से उचित अनुचित पर विचार किया जाता है, वहाँ मानव मूल्यों का कोई स्थान नहीं रहता। मूल्य इसलिये भी बदलते हैं कि मनुष्य बदलते हुए परिवेश के साथ कुछ सृजन करना चाहता है जिसके लिये वह नये–नये मूल्यों की खोज करता है सृजन की चाहत ही मूल्य–परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है, क्योंकि सृजन का कोई पल स्थान या व्यक्ति निश्चित नहीं है। इसलिए मूल्यों में सदैव परिवर्तन होता है। जीवन बदलते हैं जीवन के साथ–साथ मूल्य बदलते रहते हैं, मूल्य आवश्यकताओं के साथ देशकाल के साथ–साथ बदलते रहते है। मूल्य जब बदलते हैं तो साहित्य की अभिव्यक्तियाँ बदल जाती हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाज की परिस्थितियाँ विशिष्ट मूल्यों की उत्पत्ति में सहायक होती है।

मूल्यों के वर्ग निम्नांकित हो सकते हैं – वैयक्तिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, दार्शनिक मूल्य।

वैयक्तिक मूल्य

वैयक्तिक मूल्य के अन्तर्गत समाज, धर्म अथवा राष्ट्र का कोई विचार नहीं होता। इसमें किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा, रूचियों अभिवृत्तियों से संबंधित मूल्य ही आते हैं। वैयक्तिक मूल्यों के अन्तर्गत ही साहचर्य, प्रेम सौन्दर्य, सत्य आदि अभिवृत्तियों से उत्पन्न मूल्य आते हैं। डा० धर्मवीर भारती ने वैयक्तिक मूलयों के बारे में कहा है–

''मानवीय मूल्य अन्तोगत्वा मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में ही पनपते हैं और विकास, व्यक्ति से समूह या समाज की ओर होता है।''[18]

सामाजिक मूल्य

वैयक्तिक जब समाज के विकास में सहयोग देने लगते हैं तो वे सामाजिक मूल्य कहलाते हैं। सामाजिक मूल्यों एवं वैयक्तिक मूल्यों का सामंजस्य ही मानवीय मूल्यों का द्योतक है। राष्ट्र प्रेम, सामज–प्रेम, मानवता, अहिंसा त्याग, क्रान्ति अभिवृत्ति से उत्पन्न मूल्य इसी कोटि के अनतर्गत रखे जाते हैं।

आर्थिक मूल्य

धन अथवा द्रव्य से सम्बन्धित मूल्य आर्थिक मूल्य कहलाते हैं। अर्थ के बिना मानव महत्व शून्य हो जाता है।

धार्मिक मूल्य

धार्मिक मूल्यों के अन्तर्गत जगत की नश्वरता, मानव जीवन की सार्थकता तथा शाश्वत सुख के लिए प्रयत्न करना आता है।

राजनैतिक मूल्य

राज्य मानवीय मूल्यों का परम व्यवस्थापक है। दूसरों को अपनी संकल्प सिद्धि का साधन बनाना राजनीतिक व्यवहार कहा जाता है। राज्य, शासन, सत्ता सम्बन्धी मूल्य राजनैतिक मूल्य कहे जाते हैं। इस प्रकार यदि मूल्यों की गणना की जाए तो निश्चित संख्या बताना असंभव है। सभी मूल्य जीवन में रहते हैं कहा जा सकता है कि जीवन सदा एक सा नहीं रहता, उसमें बाह्य अथवा आन्तरिक दृष्टि से परिवर्तन आते रहते हैं। परिस्थितियों के परिवर्तन से ही जीवन–मूल्य भी परिवर्तित हो जाते हैं।

यह सत्य है कि आध्यात्मिक दृष्टि जीवन मूल्यों का विकास करती है और भौतिकवादी दृष्टिकोण, जो स्वार्थपूरित ओर आत्मकेन्द्रित होता है, जीवन मूल्यों के विकास का पथ बाधित करता है। अधतन विश्व परिदृश्य भौतिकोन्मुखी है। अतः विश्व स्तर पर जीवन मूल्यों में भारी क्षति हुई है। धर्म जीत सरल मूल्यों के ह्रास पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं–

''दर्द की पुरवा/ नदी के तीर
जिन्दगी ढोती रही शहतीर
जल गई/ संकल्प की तस्वीर
आज जीवन मूल्य रोते हैं।[19]

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

अंत टिप्पणी

1. *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम लाईफ पृष्ठ संख्या – 01*
2. *डिक्शनरी ऑफ थॉट्स, लाईफ पृ० सं० – 341*
3. *डॉ० हरदेव बाहरी : प्रसाद साहित्य कोष, पृ०सं० 164*
4. *प्रेमचन्द : कुछ विचार – जीवन में साहित्य का स्थान, पृष्ठ संख्या – 90*
5. *गीता – अध्याय – 2 श्लोक, 20*
6. *महात्मा गांधी – दि लास्ट फेस – प्यारेलाल पृ०सं० – 507*
7. *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स वाल्यूम लाईफ, पृ०सं० 01*
8. *डिक्शनरी ऑफ थॉट्स, लाईफ पृ०सं० – 341*
9. *अज्ञेय : 'आंगन के पार द्वार' पृ० सं० 08*
10. *विलियम स्मार्ट – ''एन इन्ट्रोडक्शन आन दि थ्योरी ऑफ वैल्यू'' पृष्ठ सं० 08*
11. *आधुनिकता और भारतीय परम्परा' डा० महावीर दधीची, पृ० सं० 221*
12. *मूल्य मीमांसा, गोविन्द चन्द पाण्डेय, पृ० सं० 24*
13. *सी०ए०मूर : दि इण्डियन माइण्डेड, पृ० सं० 153*
14. *यज्ञदेव शल्य : संस्कृति मानव कृतित्व की व्याख्या पृ०सं० 117*
15. *महाभारत शान्ति पर्वणि – पृ०सं० 4853*
16. *रामचरितमानस : तुलसीदास, बालकाण्ड पृ० सं० 175*
17. *शिवगीता : अध्याय 13 : पृ०सं० 32*
18. *'मानव मूल्य और साहित्य', डॉ० धर्मजीत भारती पृष्ठ संख्या – 55*
19. *'तुम पुकारते तो सही' धर्म जीत सरल, वर्ष 2002, पृ० सं० 46*